शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2023
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

सामाजिक चिन्तक का आत्म संघर्ष : 'गौ-उवाच'

मंजु यादव (शोधार्थी)
बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय
भोपाल, मध्यप्रदेश, भारत

सनातन का मूल मंत्र है - गौ उवाच
एक लख गउए नंद बबा के, नौ मन माखन होय

गौ-वंश के बिना भारतीय सनातन संस्कृति की कल्पना भी संभव नहीं है। गौ-वंश की उपादेयता पर धार्मिक संकीर्णता वाली विचारधारा की बेड़िया तोड़ते हुए गौसंरक्षण के सांस्कृतिक संकट की गम्भीरता को देखते हुये युगपुरुष माँ भारती की वेदना और भारतीय संस्कृति के संरक्षणसंवर्धन हेतु रचनाधर्मिता में समर्पित डॉ. देवेन्द्र दीपक ने 'गौ-वंश उवाच' नाम से गाय पर केन्द्रित तीस कविताओं का संग्रह (2017) प्रस्तुत किया है, जो गाय की वेदना और उसके प्रश्नों को स्वंय गौ द्वारा प्रस्तुति है अर्थात गौ-उवाच है। स्वंय गौ - द्वारा प्रस्तुत होने के कारण ही रचना का नाम 'गौ-उवाच' बड़ा ही सार्थक बन पड़ा है।

हिन्दी साहित्य की प्रथम पंक्ति के पुरोधा विद्वान डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र लिखते हैं कि "युगानुरूप अपेक्षित राष्ट्रबोध और भारतीय सांस्कृतिक प्रतिभावों के संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति सर्वथा प्रतिबद्ध तपः पूत साहित्यकार डॉ. देवेन्द्र दीपक की यह काव्यकृति 'गौ-उवाच' स्वतन्त्र भारत में गाय की मूक अंतर्वेदना का मर्मस्पर्शी अंतर्नाद है।

डॉ.देवेन्द्र दीपक का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ.देवेन्द्र दीपक का जन्म 31 जुलाई 1934 को हुआ। उन्होंने सांस्कृतिक उन्मेष, सामाजिक समरसता और सामजिक न्याय हेतु 25 पुस्तकों का लेखन किया है। साक्षात्कार, छंद प्रणाम और प्रणाम कपिला पत्रिका के संपादक रहे। उन्होंने मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, साहित्य अकादमी और निराला सृजन पीठ के निदेशक का दायित्व भी सम्हाला है। उनकी साहित्य साधना के लिए उन्हें केन्द्रीय हिंदी संस्थान का गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का पंडित दीनदयाल उपाध्याय और भूषण सम्मान, मध्यप्रदेश का शिखर सम्मान, दलित साहित्य अकादमी का डॉ.आंबेडकर विशिष्ट सेवा सम्मान, हिंदी परिषद् का परिषद् सम्मान, संस्कार भारती का कला ऋषि सम्मान, मधुवन का श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान और श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति का शताब्दी सम्मान प्राप्त हुआ है। उन्होंने 6 विश्व हिंदी सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व किया है।

डॉ.देवेन्द्र दीपक और गौ उवाच

समाजिक और सांस्कृतिक चिन्तक के रूप में अपनी ख्याति जमा चुके 'गौ उवाच' के कवि डॉ. देवेन्द्र दीपक की तीस कविताओं का संग्रह है। इसमें गौ-वाचक का चिन्तक इतना प्रखर है कि उसने 'गौ' को वाणी प्रदान कर भारतीय संदर्भ में अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करने में उसके हित में संघर्ष करने वालों

और उसके नाम पर अपने लिए संघर्ष वालों की हित-चिन्ता को प्रश्नचिह्न बनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है।

इसके लिए वह अपनी और अपने परिवार की 'गौ' के प्रति गहन आस्था को शब्द देते हुए 'पूर्विका' ही कविता से करता है; यथा-

गाय पहले उत्तर थी, अब एक जटिल प्रश्न है।
गाय पहले संस्कृति थी, अब शुद्ध राजनीति है।
गाय पहले प्रतीक और उपमान थी, अब वह मात्र एक पशु है।
गाय पहले द्वार की शोभा थी, अब वह घर का बोझ है।
गाय पहले पंचगव्य देती थी, अब बीफ देती है।
गाय पहले धन थी, अब गाय ऋण है।

"शाहपुरा में रहते नित्य एक गाय हमारे द्वारा पर आती। किसकी गाय ? मुझे पता नहीं। घर के सभी सदस्य उसके आने की प्रतीक्षा करते। उसे गौ ग्रास देते। उसकी पीठ सहलाते। एक अजीब सुख मिलता। हम उसे गोमती कहकर बुलाते। मैं गौमती की आँख में देखता। गोमती मेरी आँख में देखती। गोमती की तरल आँखे; कभी हँसती आँखें। बहुत कुछ देखा गोमती की आँखों में। कभीकभी लगा कि गोमती की आँख और मेरी माँ की आँख एक जैसी है- 'स्नेह भरी, डाँट भरी, शिकवा-शिकायत भरी।'

और उसे सचमुच अपनी माँ याद आ जाती और वह कह उठता हैं-

"हमारे द्वार पर जो गाय रोज आती है।
उसे हम सब प्यार से गोमती कहकर बुलाते हैं
गोमती समय की पाबंद है
उसे अपना समय सदा याद रहता है
गोमती रास्ता नहीं भूलती
गोमती जगह को अच्छी तरह पहचानती है
गोमती गेट पर लगे ताले को अच्छी तरह पहचानती है।
उसे हमारा होना न होना मालूम रहता है।
प्रेम
समय की पाबंदी
प्रेम
जगह की पहचान
प्रेम गोग्रास है
गो ग्रास प्रेम है
गो ग्रास उभय पक्षी प्रतीक्षा है
दादी की दी गई दीक्षा है,
संस्कृति की परीक्षा है।

गो ग्रास की उभयपक्षी प्रतीक्षा को प्रमाणिकता प्रदान करते हुए वह अपने मित्र जमीरुद्दीन की गौ के प्रति गहन आस्था एवं सम्मान को व्यक्त करते हुये 'दौड' में कहता है- मेरा एक दोस्त है जमीरुद्दीन अंग्रेजी का प्रोफेसर -

मेरा अनुवादक भी
कुछ-कुछ अक्खड़ !
एक दिन उसने बताया-
बचपन में दौड में वह सदा अव्वल आता था।
"तुम्हारे अव्वल आने का गुर ?"
घर में थी गाय
खूब पीता था दूध तू
बछड़े की पकड़कर पूँछ
बचपन में
रोज रोज दौड़ा
मैं मुसलमान का मौड़ा।
जमीर के गुर में सुर तो है।

यही उसे याद आ जाती है आज की भारत की थोथी सांस्कृतिक किन्तु राजनैतिक आभास वाली लोकतंत्री उद्घोषणा की राजनीति, कला, संस्कृति और शिक्षा की सब मंचों पर दशकों से गंगा-जमुनी तहजीब तकिया कलाम की तरह चलन में है।

अगर सच में ऐसा है
तो अच्छी बात है
एक बात हमें कहनी है
सदा के लिये
यह बात तय हो जानी चाहिये
और हमें बता दी जानी चाहिये।
गंगा-जमुनी तहजीब में
हम गायों की क्या जगह है।
और जो जगह है।
उसकी क्या वजह है।

कवि का चिंतक उसकी वजह तलाशने की कोशिश में स्थायी भ्रम को 'टूटता भरम' में दो टूक कहता है -

यह भारत है,
यहाँ कुछ है
जिसके कारण स्थायी आरत है
हरिचंद, हडसन, हुसैन,
मेरे तीन बेटे-

समय ने मुझे समझा दिया है
कसमें खाने के बाद भी
जगह-जगह गुहार लगाने के बाद भी
सत्याग्रह करने के बाद भी
हरिचंद मेरी रक्षा नहीं कर सकता है।
हडसन ठीक से मेरे पास आता ही नहीं
भारत में हुसैन ही
मेरी रक्षा कर सकता है-
दिल्ली का राजा
केवल उसकी बात मानता है
लेकिन हुसैन मेरी रक्षा नहीं करता
क्योंकि वह मुझे
अपनी माँ नहीं
हरिचंद की माँ मानता है
मेरा भरम टूट रहा है ।

संभवतः इस भ्रमजाल के मूल को समझने के प्रयत्न में वह भारतीय नेताओं की आरंभिक समझ की ओर दृष्टिपात करता है और हिंसक नजरें शीर्षक के अन्तर्गत गाय के मुख से उसकी प्रवंचना को मुखरित करता है :

वे मुझे हिंसक नजरों से घूरते हैं।
मेरे प्रति घोर अवमानना है भीतर उनके
वे चिल्ला-चिल्लाकर
ताल ठोंक कर कहते हैं
हम कुछ भी खाएँ / हम कुछ भी पिएँ / हम कुछ भी पहनें / हम कैसे भी रहें / हम कुछ भी करें / यह हमारी मर्जी /कोई कौन होता है / हमें टोकने वाला ? / सामने आए / हमें रोकने वाला / करूण-कातर / मैं टुकुर-टुकुर देखती हूँ / मेरे भारत का यह कैसा संविधान ? इनके सब हैं अधिकार / मेरे हित में क्या है समाधान ?

कवि बहुत अधिक व्यथित और भावुक हो उठता है। उत्तर की तलाश में वह 'वफा' पर दृष्टि डालता है और प्रवंचित अनुभव करता है -

वह जो विदेशी था चला गया
ये जो देशज है
यही तो अदल-बदल कर
तख्त पर बैठते रहे
आरे के दांतों के नीचे
हमारी गर्दन ज्यों की त्यों

हमारी चीख पुकार ज्यों की त्यों
हमारी चीखें सुने कौन ?
हमारी प्राणों की भीख सुने कौन ?
संतों की सीख सुने कौन ?
हमारे दर्द की तारीख लम्बी
हमारी मुक्ति की तवारीख बड़ी दूर
दिल्ली की पंचायत अंधी, बहरी
इक तरफा
हम गायों से
कौन करे वफा।"

संभवतः कवि का चिन्तक किसी निष्कर्ष पर पहुँच चुका है ऐसा लगता है। इसी चिंता में वह भारत पर विदेशियों के चले जाने के बाद सिंहासनारूढ़ हुई कांग्रेस पर सवालिया हो उठता है। सवाल सीधे काँग्रेस से है -

क्या सोचकर
तुमने दो बैलों की जोड़ी को
अपना चुनाव चिह्न बनाया।
और क्या सोचकर।
तुमने उसे छोड़ दिया
क्या सोचकर तुमने एक बार फिर गाय और बछड़े को
अपना चुनाव चिह्न बनाया
और फिर क्या सोचकर
तुमने उसे छोड़ दिया
मुझे उत्तर चाहिए !

यहाँ उत्तर देने वाला है ही कौन ? उसे तो स्वयं उसे ही खोजना है। इसीलिये उसे गीता याद आ जाती है जिसके माहात्म्य में कहा गया है।

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ! पार्थो' वत्सः सुधीर्भोक्ता 'दुग्धं गीतामृतं महत्'। किन्तु यहीं वह भटक गया और बहुत कुछ महत्वपूर्ण कहने के अवसर से चूक गयाऔर अपने राजनीतिक चश्मे को उतारकर 'गाय तो विष्णु है' कहते हुए विराम लेने पर उतर आया यथा -

नीति की आँख पर
राजनीति का चश्मा।
गाय को यों मत देख,
गाय मात्र शब्द नहीं,
गाय एक तर्कसम्मत आस्था है।
गाय लीक है।

गाय उपमान है।

शास्त्रों ने यों ही नहीं कह दिया / उपनिषदें गाय हैं / अमृतमय दूध है गीता / महाकवि रवीन्द्रनाथ ने कहा - भारत को दुधारू गाय समझ अंग्रेज उसका दोहन कर रहे हैं देखो, कल्लू कसाई अपनी रजिया बिटिया को / लाड़ में मेरी भोली गाय / कहकर ही बुलाता है।

डॉक्टर देवेन्द्र दीपक का कवि उद्वेग में आता है तो अबाध प्रवाह में बह जाता है। उसे ध्यान ही नहीं रहता कि वह क्या कहना चाहता है, और क्या कह गया। लगता है कि वह ऐसे स्थलों पर प्रत्युत्पन्नमति वार्ताकार या स्वयं का साक्षात्कार लेता हुआ स्वयं ही प्रत्युत्तर दे उठता है यथा-

आजकल हम रसोई में वापरते हैं
पतंजलि का गाय का घी
लगता है
कुछ कुछ जग रही है घी
सच मानिए
भोजन का स्वाद ही बदल गया।
गाय का घी वापरने में
इतना किया विलम्ब
पडें क्यों रहे क्षैतिज
क्यों न हुए लम्ब

'गौ-उवाच अपने आप में एक विमर्श है, आलोचना है, अपने समय की और क्षोभ है, भारतीय संस्कृति का ढोल पीटने वाले गंगा-जमुनी समझ का प्रचार, प्रसार और उसके नाम पर दोहन करने वाले राजनीतिज्ञों, सत्ता के भूखे लोगों की बेढब चालों पर जो संस्कृति की समझ को सही व्याख्या प्रदान करने से कतराते हैं अपने भीतर अपने घरो में वह सब सांस्कृति पर्व और त्यौहारों में समर्पित चित है किंतु प्रत्यक्ष रूप से उसकी आलोचना करने में सौभाग्य का अनुभव करते हैं। 'गौ-उवाच' में कवि ऐसे अवसरों पर बहुत ही आक्रामक है तथापि बोध वह सब कहने के तत्पर है जो अपने कर्तव्य की और जन उन्मुख भी करे।

गौ-उवाच के मार्फत सम्वेदना की कसौटी पर गोवध के प्रश्न

गौ उवाच इस दृष्टि से विशिष्ट और उल्लेखनीय है कि यह एक सुचिंतित और योजनाबद्ध कृति है। गाय भारतीय समाज में सदैव आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व के कारण पूज्य रही है। अपने दूध से मनुष्य का पालन करने के कारण वह माता के रूप में प्रतिष्ठित रही है। वह समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली कामधेनु मानी जाती रही है। ऐसी मातृस्वरूपा गौ आज सांप्रदायिक और राजनैतिक आखाड़ों के केन्द्र में आ गयी है। इसी दुर्दान्त स्थिति ने इस कृति को जन्म दिया है।

पूर्विका में कवि डॉ देवेन्द्र दीपक ने इस कृति के उद्देश्य को साफ शब्दों में स्पष्ट भी किया है। उन्होंने लिखा हैः 'गाय पहले उत्तर थी, अब एक जटिल प्रश्न है / गाय पहले संस्कृति थी, अब क्षुद्र राजनीति है / गाय पहले प्रतीक और उपमान थी, अब वह मात्र एक पशु है / गाय पहले द्वार की शोभा थी, अब वह घर का बोझ है / गाय पहले पंचगव्य देती थी, अब वह 'बीफ' देती है / गाय पहले धन थी, अब गाय ऋण है।'

ये वे विचार-सूत्र हैं, जिनको केन्द्र में रखकर प्रस्तुत काव्यकृति गौ उवाच' की रचना की गयी।

आर्य ग्रन्थों में गाय की महिमा, भारतीय समाज की उसके प्रति सनातन आस्था और उसकी वर्तमान दुर्दशा पर काव्य-विवेक के साथ इस कृति में विचार किया गया है। मसलनः 'गाय मात्र संज्ञा नहीं है / गाय एक तर्क सम्मत आस्था है।'

'गाय के सवाल पर / भारत बन गया झूला / इतिहास, परम्परा, जरूरत सब भूला।'

अथवा

गौ उवाच में तीस शीर्षकों से काव्य-विचार संकलित किये गये हैं। मैं जानबूझकर संग्रह की रचनाओं को कविताएँ कहने की बजाय काव्य-विचार कह रहा हूँ। यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि कृति में योजना के अनुरूप भाव-तत्व के स्थान पर विचार-तत्व को अधिक महत्व दिया गया है। सम्वेदना और करुणा भी विचार की सहचरियों की भाँति उसके समर्थन में आयी हैं। मसलनः 'सवाल सीधा होना चाहिए और सीधे-सीधे पूछा जाना चाहिए / बिना लाग-लपेट के / सवाल सीधे कांग्रेस से है।'

अथवा

"अपने बुढ़ापे में चाहिए
तुम्हें अच्छी खासी पेंशन
हमारे लिए बुढ़ापे में बूचड़खाने का दरवाजा
क्यों भाई पंडित
क्यों भाई ख्वाजा।"

गौ-उवाच के अवतरण की पृष्ठभूमि का खुलासा करते हुए स्वयं दीपक जी ने लिखा है:"2015 के अंत में बिहार चुनाव के आसपास गाय और बीफ को लेकर मीडिया में जो भी आया, उससे मन खिन्न हुआ। "उसके बाद जो माहौल बना, उसी के परिणामस्वरूप इस सम्वेदनषील कवि ने अपने कविधर्म का अनुभव करते हुऐ गाय और समाज के बीच खड़े होकर समाज की सरस्वती को जगाने का निश्चय कर लिया। उसी निश्चय का प्रतिफल है गौ- उवाचा। यह कृति गाय के आत्मकथ्य के रूप में है, मगर प्रकारांतर से यह गाय की ओर से कवि का ही वक्तव्य है। वे गाय के स्थान पर खड़े होकर समानुभूति के स्तर पर पहुँचते हैं और उसकी ओर से सवाल उठाते हैं: "मैं तुम्हारी माँ हूँ / मेरे वध पर भी / तुम्हारे खून में / क्यों उठता नहीं उबाल / मेरा छोटा-सा सवाल।"

या "वह जो खाता है मेरा मांस / बड़ा सहिष्णु है / वह जो पीता है मेरा दूध बड़ा असहिष्णु है।'

या "हरिचंद को दूँगी दूध/ हमीद और हडसन को नहीं दूँगी / ऐसा हुआ है कभी / जो होगा अभी / मैं तो सबके लिये हूँ !"

गाय की ओर से कठिनतर और कारूणिक प्रश्नों को लेकर प्रस्तुत इस काव्य - 'प्रयास' के लिये कवि के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए हम उसकी इस कामना में सहभागी होना चाहेंगे कि "पेट के कारण जो बना कसाई / पेट के ही कारण / वह जरूर बनेगा ग्वाला / मेरे देखते ही देखते।"

संदर्भ ग्रन्थ

1 डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र, समाजिक चिंतक का आत्मसंघर्ष गौ उवाच, पृष्ठ क्रं-107 से 112

2 लक्ष्मीनारायण पयोधि, डॉ देवेन्द्र दीपक की रचना 'गौ उवाच' पर विमर्श शोध पत्र